दो दशक पहले तक उत्तर प्रदेश ही नहीं, पूरे देश की जनता के लिए आंखों के इलाज का पहला नाम था- 'सीतापुर आई हॉस्पिटल'। आज भले ही यह चिकित्सालय सुर्खियों से दूर हो गया हो, पर गुमनामी में भी अपनी मूल प्रतिबद्धता सेवा और उपचार को पूरी निष्ठा से निभा रहा है। 32 शाखाओं वाले इस एशिया के प्रसिद्ध संस्थान का पांच अस्पतालों तक सिमट जाना एक युग का परिवर्तन जरूर है, लेकिन इन दुर्दिनों ने ही यूपी में कॉरपोरेट सेक्टर के नेत्र चिकित्सालयों की नींव भी तैयार की। वर्तमान ट्रस्ट प्रबंधन का दावा है कि आने वाले वर्षों में यह अस्पताल फिर अपनी वही विश्वस्तरीय पहचान हासिल करेगा।

- पद्माकर पांडेय एवं फोटो ग्राफर शुभांकर चक्रवर्ती

मरीजों को रोशनी दे रहा 'सीतापुर आई हास्पिटल'

इतिहास

राजधानी से करीब 80 किमी दूर सीतापुर में वर्ष 1926 में फूस की झोपड़ी से शुरू हुई यह सेवा-यात्रा संस्थापक पद्मश्री एवं पद्मभूषण डॉ. महेश प्रसाद मेहरे की दूरदर्शिता का परिणाम है। आर्थिक लाभ की चाह से दूर, उन्होंने 1945 में महारानी एलिजाबेथ से प्राप्त दान से 11.22 एकड़ भूमि पर अस्पताल की औपचारिक नींव रखी। इसके बाद उन्होंने दूरदराज के गरीब मरीजों तक इलाज पहुंचाने के लिए प्रदेश में 32 शाखा अस्पताल खोले।

नेशनल-एशियन पहचान

500 बेड वाले मुख्य अस्पताल में रोजाना सैकड़ों नेत्र सर्जरी होती थीं। मोतियाबिंद, कार्निया प्रत्यारोपण, ग्लूकोमा, रेटिना सर्जरी, सबका उपचार यहां सहज और सुलभ था। इसी कारण एशिया में इसका बड़ा नाम हुआ। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी और पूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन तक इस संस्थान का भ्रमण कर चुके हैं।

अस्पताल का स्वर्णिम काल और दुर्दिन

2009 में बतौर चीफ मेडिकल ऑफिसर नियुक्त होने वाली कर्नल डॉ. मधु भदौरिया का कहना है कि जब उन्हें की जिम्मेदारी दी गई थी, प्रशासनिक अधिकारी उनके पति आर एस भदौरिया को नियुक्त किया गया था। उस दौरान अस्पताल समेत पूरा ट्रस्ट तमाम झंझावतों से जूझ रहा था, अस्पतालों में व्यवस्थाएं चरमरा चुकी थीं। नए संसाधन जुटे नहीं, पुराने संसाधन निष्क्रिय होने लगे, आर्थिक बोझ बढ़ता गया। यही वजह है कि सीतापुर में तमिलनाडु के मदुरै के अरविंद आई केयर सिस्टम के साथ मिलकर नेत्र चिकित्सा क्षेत्र में काम करने का एमओयू भी किया गया था।

अत्याधुनिक इलाज बहुत सस्ते में

कॉर्पोरेट सेक्टर के नेत्र चिकित्सालयों में महंगे इलाज के सापेक्ष सीतापुर आई हॉस्पिटल में अत्यंत कम शुल्क में अत्याधुनिक इलाज उपलब्ध है। इस संबंध में केजीएमयू की पूर्व विभागाध्यक्ष एवं सीतापुर आई हॉस्पिटल के शिक्षण कार्य प्रभारी डॉ.विनीता सिंह का कहना है कि अस्पताल सभी अत्याधुनिक चिकित्सकीय सेवाएं उपलब्ध हैं, जो कार्पोरेट सेंक्टर के अस्पतालों में महंगे दामों में उपलब्ध हैं। यहां पर मात्र 150 रुपये के शुल्क पर मरीज के आंखों की जांच के साथ परामर्श मिलता है। अतिरिक्त इलाज कॉर्पोरेट सेक्टर के शुल्क से करीब 50 फीसदी कम होता है, इसके अलावा दवाएं भी किफायती दरों पर उपलब्ध हैं।

नेत्र शिक्षा का मजबूत ढांचा

- एमएस ऑप्थल्मोलॉजी- 15 सीटें (हर साल नीट के जरिए)
- कुल 45 पीजी रेजीडेंट प्रशिक्षण ले रहे
- बैचलर ऑफ ऑप्टोमेट्री (बीआप्ट) - 40 सीटें
- डिप्लोमा इन ऑप्थल्मिक असिस्टेंट - 30 सीटें
- डीओए, एमसीओपी तथा लो विजन प्रशिक्षण कार्यक्रम
- ओटी असिस्टेंस व मिड-लेवल ऑप्थल्मिक तकनीशियन तैयार किए जाते हैं

विशेषज्ञ डॉक्टरों की टीम

लखनऊ के चौपड़ परिसर स्थित अस्पताल में 5 विशेषज्ञ डॉक्टर और 30 पैरामेडिकल स्टाफ सेवाएं दे रहे हैं। सुबह 9 बजे से पंजीकरण के साथ शुरू होकर दोपहर 3 बजे तक ओपीडी सेवाएं चलती है। रोजाना 100 से 150 मरीज दिखाने आते हैं।

अस्पताल के विशेषज्ञों में

- डॉ. विनीता सिंह - बाल नेत्र रोग
- डॉ. ज्योति भट्ट - ग्लूकोमा/ कैट्रेक्ट
- डॉ. अश्वनी सिंह - कार्निया और रेफ्रेक्टिव
- डॉ. शरीन मिश्रा पाण्डेय - रेटिना
- डॉ. गुरसिमरन कौर- एंटिरियर सेगमेंट

नेत्र शिक्षा का बड़ा केंद्र

1964 में स्थापित इंस्टीट्यूट ऑफ ऑप्थल्मोलॉजी ने इस संस्थान को नेत्र विशेषज्ञों की पाठशाला बना दिया। इसका शिलान्यास तत्कालीन राष्ट्रपति राधाकृष्णन और उद्घाटन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने किया था। वर्ष 1981 में भारत सरकार ने इसे रीजनल इंस्टीट्यूट ऑफ ऑप्थल्मोलॉजी का दर्जा दिया। साल 1974 में संस्थापक की मृत्युपरांत उनके पुत्र और ट्रस्ट सचिव डॉ. मिथलेश कुमार (एमके) मेहरे ने 2011 तक कमान संभाली। इस दौरान इस अस्पताल और ट्रस्ट को हथियाने के षड्यंत्र भी रचे गए। वर्ष 1994 में राजनैतिक हस्तक्षेप से संस्थान में वरिष्ठ चिकित्सकों की हड़ताल भी हुई, ट्रस्ट के समक्ष मुश्किलें इस कदर खड़ी कर दी गई थी कि संस्थान की सुरक्षा के लिए तत्कालीन ट्रस्ट प्रशासन को बाहुबलियों का सहयोग लेना पड़ा, जिसमें आर्थिक व्यय अत्यधिक था। हालांकि आर्थिक चुनौतियां आदि इस संस्थान के पतन के कारण बने। वर्ष 2002 में कार्यकारी प्रशासनिक अधिकारी डॉ. ए. के. पॉल के निधन और बाद में व्यवस्थागत कमजोरियों के बीच अस्पताल लगातार लड़खड़ाता गया। हालांकि वर्ष 2009-10 में ट्रस्ट ने जिम्मेदारी कर्नल डॉ. मधु भदौरिया और प्रशासनिक प्रबंधन आर. एस. भदौरिया को सौंपी, जिसके बाद पुनरोद्धार की प्रक्रिया शुरू हुई।

मिल रहा है गंभीर बीमारियों का अत्याधुनिक इलाज

संस्थापक डॉ. मेहरे द्वारा 1949 में बनाए गए ट्रस्ट के अंतर्गत संचालित सीतापुर नेत्र चिकित्सालय में वर्तमान नामित ट्रस्टी (कर्नल) डॉ. मधु भदौरिया का कहना है कि वर्तमान में सीतापुर अस्पताल समेत प्रदेश में पांच अस्पताल संचालित हो रहे हैं, प्रयागराज स्थित अस्पताल वर्तमान में राज्य सरकार से लौटकर पुनः ट्रस्ट के पास वापस आ चुका है, जिसे मरीजों के लिए उपयोगी बनाया जा रहा है। उन्होंने बताया कि 2008-09 में जो अस्पताल बंद हो गया था, उस अस्पताल में एक साल में 50 हजार से ज्यादा सर्जरी हो रही हैं, जो कि साल दर साल आकंड़ा बढ़ता जा रहा है। उन्होंने बताया कि राजधानी लखनऊ समेत अन्य शाखा अस्पतालो में डे केयर की सुविधा के साथ नेत्र संबंधी समस्त चिकित्सकीय सुविधाएं उपलब्ध हैं। राजधानी में हजरतगंज स्थित चौपड़ हास्पिटल परिसर में मरीजों की संख्या लगातार बढ़ रही है। बीमारियों में बताया कि मोतियाबिंद के ऑपरेशन के साथ ही, रेटिना ट्रांसप्लांट, पीडियाट्रिक ऑप्थलमोलॉजी, आई बैंक, कार्निया प्रत्यारोपण और ग्लूकोमा तक का अत्याधुनिक इलाज उपलब्ध है।

45 रेजीडेंट्स करते हैं एमएस

सीतापुर आई हॉस्पिटल के कॉलेज में एमएस ऑप्थल्मोलॉजी पीजी की 15 सीटें हैं, जिन पर हर साल नीट काउंसिलिंग के द्वारा दाखिला मिलता है। इस प्रकार तीन साल के करीब 45 पीजी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण के साथ चिकित्सकीय सेवाएं प्रदान करते हैं। इसके अलावा चार वर्षीय बैचलर ऑफ ऑप्टोमेट्री (बीआप्ट) की 40 सीटों पर हर साल दाखिला मिलता है। डिप्लोमा इन ऑप्थल्मिक एसिस्टेंट की 30 सीटों पर हर साल दाखिला मिलता है। इसके आलवा डीओए और एमसीओपी पाठ्यक्रम भी संचालित होते हैं, जिसमें मिड लेवल आप्थैलमिक टेक्नी शियन का प्रशिक्षण दिया जाता है, मरीजों को ओटी में तैयार करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। लो विजन ट्रेनिंग प्रोग्राम भी सिखाया जाता है।

लो विजन विभाग : रोशनी खोने वालों को जीवन का सहारा

जब उम्र या बीमारी से आंखों की रोशनी बहुत कम रह जाती है, तो लो विजन विभाग मौजूद विशेष उपकरण, सॉफ्टवेयर, स्मार्टफोन आधारित तकनीक से मरीजों को फिर से चलने-फिरने और दैनिक काम करने योग्य बनाता है।

उपलब्ध सेवाएं -

- मोतियाबिंद सर्जरी, ग्लूकोमा उपचार, रेटिना सर्जरी, कॉर्निया सर्जरी, बाल नेत्र रोग, न्यूरो-ऑफ्थल्मोलॉजी, ओकुलोप्लास्टी, नेत्र पुनर्वास सेवाएं।

अनुभूति

लंबे चौधरी और होली की मस्ती

सुरेश बाबू मिश्रा
बरेली

बात उन दिनों की है जब मैं अपने जनपद बदायूं के एस.के. इंटर कॉलेज में फर्स्ट ईयर में पढ़ रहा था। कॉलेज में होली की छुट्टियां हो गई थीं और मैं होली मनाने गांव आ गया था। उन दिनों होली कम से कम एक सप्ताह की होती थी।

गांव में एक थे लंबे चौधरी। उनका असली नाम क्या था किसी को नहीं मालूम, सब उन्हें लंबे चौधरी के नाम से ही जानते थे। लंबी चौड़ी कद काठी, गठा हुआ शरीर और रूआबदार चेहरा। निपट अनपढ़ थे। मगर उनकी स्मरण शक्ति बड़ी गजब की थी। हम लोग गांव के रिश्ते से उन्हें बाबा कहते थे, मगर लंबे चौधरी हम लोगों से भी हंसी मजाक और ठिठोली करने से नहीं चूकते थे। एक बार हम लोगों ने होली पर लंबे चौधरी को उनकी हंसी मजाक का जवाब उन्हीं के अंदाज में देने की योजना बनाई। लंबे चौधरी को छेड़ने का मतलब था, सांप के बिल में हाथ डालना। मगर हम लोग अपने निर्णय पर अडिग थे। हमारी योजना तब और आसान हो गई। जब लंबे चौधरी के हम लोगों के हम उम्र चार-पांच भतीजे हमारी योजना में शामिल हो गए।

होली के चार-पांच दिन बाकी रह गए थे। गांव में होली का उल्लास पूरे जोरों पर था। रात को काफी देर तक बड़ी चौपाल पर ढोल-नगाड़े के साथ होली के गीत होते रहते और आधी रात के बाद शुरू होता गांव की होली को ऊंचा और बड़ा करने का अभियान। सब दूर-दूर से सूखी लकड़ी पेड़ों की टहनी, पुराने ठूंठ लेकर आते और होली पर डालते।

एक रात जब सब लोग होली बढ़ाने के अभियान के लिए चले गए, तो योजना के अनुसार हम लोग लंबे चौधरी की चौपाल पर पहुंचे, मगर हम लोग यह देखकर हैरान रह गए कि लंबे चौधरी जाग रहे थे। लगातार तीन दिन तक हम लोग आधी रात के बाद लंबे चौधरी की चौपाल पर जाते रहे मगर हमें सफलता हाथ नहीं लगी। अगली रात को जब हम लोग लंबे चौधरी की चौपाल पर पहुंचे, तो हम सब की बांछें खिल गईं। वे गहरी नींद में सो रहे थे और उनके खर्राटे दूर-दूर तक गूंज रहे थे। ईश्वर शायद आज हम लोगों पर कुछ अधिक ही मेहरबान था। लंबे चौधरी चौपाल पर बिल्कुल अकेले थे।

अपनी योजना के अनुसार हम लोगों ने रस्सी से लंबे चौधरी को चारपाई से अच्छी तरह से बांध दिया और फिर हममें से चार लड़के लाठियां डालकर चारपाई को कंधों पर रखकर होली की तरफ चल दिए। किसी खतरे की सूचना देने के लिए दो-तीन लड़के हमसे कुछ दूरी पर आगे-आगे चल रहे थे और दो-तीन पीछे-पीछे। यह एक संयोग ही था कि हमें किसी ने नहीं देखा और बिना किसी रुकावट के हम लोग होली के पास पहुंच गए। हमने लंबे चौधरी को चारपाई सहित होली पर रख दिया और फिर चुपचाप अपने-अपने घरों को लौट गए।

सुबह जब गांव के लोग जागे तो सबने होली पर एक अजब नजारा देखा। होली के ढेर पर चारपाई से बंधे लंबे चौधरी खर्राटे भर कर सो रहे थे। धीरे-धीरे होली के आसपास लोगों की भीड़ जमा हो गई। लोग आपस में कानाफूसी कर रहे थे। लोगों की आवाजें सुनकर लंबे चौधरी जाग गए। उन्होंने चारपाई से उठने की कोशिश की मगर चारपाई से अच्छी तरह से बंधे होने के कारण वे उठ नहीं पाए। उन दिनों गांवों में यह मान्यता थी कि होली के ढेर पर एक बार जो चीज रख दी गई उसे वापस नहीं उठाया जा सकता। अब लंबे चौधरी के साथ क्या किया जाए, सब इसी के बारे में बातचीत कर रहे थे। धीरे-धीरे पूरा गांव वहां जमा हो गया था। हम लोग भी एक तरफ खड़े यह नजारा देख रहे थे। इस समस्या पर विचार करने के लिए गांव के कुछ बुजुर्गों की एक पंचायत बैठी। काफी देर के विचार-विमर्श के बाद उन लोगों ने सर्वसम्मति से फैसला सुनाया कि लंबे चौधरी के भाई लंबे चौधरी के वजन से दोगुनी लकड़ी होली के ढेर पर रखें तभी लंबे चौधरी को होली के ढेर से उतारा जा सकता है।

अब इतनी सूखी लकड़ी कहां से आए यह समस्या चौधरी के भाईयों के सामने मुंह बाए खड़ी थी। उन लोगों ने अपनी एक पुरानी बैलगाड़ी को कई घंटे की मेहनत के बाद कुल्हाड़ियों से चीरकर होली के ढेर पर रखा तब कहीं जाकर लंबे चौधरी को होली के ढेर से उतारा जा सका। लंबे चौधरी की यह हालत देखकर लोग मन ही मन मुस्कुरा रहे थे। औरतें घूंघट मुंह में दबाकर हंस रही थीं। लंबे चौधरी किसी नाग की तरह फुफकार रहे थे और धारा प्रवाह गालियां दे रहे। उनकी गालियां भी हम लोगों को होली के प्रसाद की तरह लग रही थीं।

जॉब का पहला दिन

भावनाएं, अनुभव और एक नई शुरुआत

जीवन में कुछ क्षण ऐसे होते हैं, जो समय बीत जाने के बाद भी स्मृतियों में सदैव ताजे बने रहते हैं। नौकरी का पहला दिन भी ऐसा ही एक अविस्मरणीय अनुभव है। यह केवल रोजगार की शुरुआत नहीं, बल्कि आत्मनिर्भरता, जिम्मेदारी और आत्मविश्वास की दिशा में उठाया गया पहला सशक्त कदम होता है। उस दिन मन में उत्साह, जिज्ञासा, हल्की घबराहट, भविष्य के सपने और स्वयं को सिद्ध करने का संकल्प सभी भावनाएं एक साथ उमड़ती हैं।

प्रो. हिमांशु शेखर सिंह
अयोध्या

मेरे जीवन में यह महत्वपूर्ण अवसर तब आया, जब मैं 10 जनवरी 1994 को डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या में अपने प्रथम कार्य दिवस हेतु पहुंचा। प्रारंभिक रूप से 8 जनवरी को भी मैं बड़े उत्साह से वहां गया था, पर द्वितीय शनिवार होने के कारण कार्यालय बंद मिला और कार्यभार ग्रहण नहीं कर सका। हल्की निराशा के बावजूद मन में दृढ़ विश्वास था कि शीघ्र ही नई यात्रा प्रारंभ होगी। दो दिन बाद पुनः पहुंचा तो मन में आत्मविश्वास और जिम्मेदारी का भाव अधिक प्रबल था। विश्वविद्यालय परिसर में प्रवेश करते ही ऐसा लगा मानो जीवन का एक नया अध्याय खुल रहा हो।

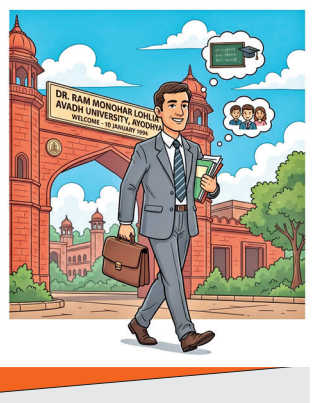

विभागाध्यक्ष प्रो. एस. सी. सक्सेना तथा अन्य वरिष्ठ शिक्षकों ने अत्यंत आत्मीयता से स्वागत किया। उनका स्नेहपूर्ण व्यवहार मेरे लिए प्रेरणास्रोत बना। नियुक्ति संबंधी औपचारिकताओं को पूरा करते हुए जब मैंने संबंधित कार्यालयों में पत्र जमा किए, तो लगा कि लंबे समय से प्रतीक्षित लक्ष्य साकार हो गया है। उस समय विभाग नवस्थापित था, इसलिए कक्षाएं प्रारंभ नहीं हुई थीं। हम सबने मिलकर पाठ्यक्रम निर्माण और शैक्षणिक योजनाओं पर चर्चा की। चाय की चुस्कियों के साथ हुआ संवाद केवल औपचारिक नहीं, बल्कि सहयोग और भविष्य निर्माण की भावना से ओतप्रोत था। पहली नौकरी व्यक्ति को विद्यार्थी से जिम्मेदार पेशेवर की भूमिका में परिवर्तित कर देती है। मन में अनेक प्रश्न उठते हैं- क्या मैं अपेक्षाओं पर खरा उतर पाऊंगा?

कार्य का वातावरण कैसा होगा? किंतु यही प्रश्न आत्मविश्वास को भी जन्म देते हैं। विशेषकर शिक्षण क्षेत्र में पहली बार कक्षा में प्रवेश करना अत्यंत भावनात्मक अनुभव होता है। विद्यार्थियों का आदरपूर्ण अभिवादन यह एहसास कराता है कि शिक्षण केवल ज्ञान देना नहीं, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण और भविष्य गढ़ने की प्रक्रिया है। समय के साथ अनुभव बढ़ता गया और प्रारंभिक संकोच आत्मविश्वास में बदलता गया। 33 वर्षों की इस यात्रा ने मुझे सिखाया कि सफलता का आधार केवल प्रतिभा नहीं, बल्कि निरंतर परिश्रम, धैर्य, अनुशासन और सकारात्मक दृष्टिकोण है।

चुनौतियां हर क्षेत्र में आती हैं, पर वही हमें परिपक्व और सशक्त बनाती हैं। एक शिक्षक के रूप में मैंने अनुभव किया कि ज्ञान बांटने से स्वयं का ज्ञान भी समृद्ध होता है और विद्यार्थियों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाना ही वास्तविक संतोष देता है। नए शिक्षकों के लिए मेरा संदेश है कि शिक्षण को केवल नौकरी न समझें, बल्कि इसे समाज निर्माण का पवित्र दायित्व मानें। निरंतर अध्ययन, विनम्रता, नई तकनीकों को अपनाने की तत्परता और विद्यार्थियों के प्रति संवेदनशीलता ये गुण एक आदर्श शिक्षक की पहचान हैं। यदि व्यक्ति अपने मूल्यों, ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा को बनाए रखे, तो हर दिन नई सीख और नई उपलब्धि लेकर आता है। अंततः निरंतर प्रयास, आत्मविश्वास और समर्पण ही जीवन में आगे बढ़ने के सच्चे मूल मंत्र हैं।

कुमाऊंनी होली : नाद, राग और स्वर की जीवित विरासत

कुमाऊं की होली केवल एक पर्व नहीं, बल्कि शास्त्रीय संगीत की भाव-समृद्ध परंपरा का जीवंत उत्सव है। यहां होली नाद, राग और स्वर के विशिष्ट संयोजन से सजी होती है। जिन्होंने भी इस परंपरा को अपने ज्ञान, साधना और सुरों की तपस्या से आगे बढ़ाया, उनकी समझ और गायकी की जितनी प्रशंसा की जाए कम है। कुमाऊंनी होली में शास्त्रीय संगीत का अनुशासन भी है और लोकजीवन की सहजता भी, यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

हरीश उप्रेती करन
हल्द्वानी

एक समय था जब गांवों में होली का इंतजार बच्चों से लेकर बुजुर्गों तक सभी को रहता था। बड़े ढोल की थाप पर गोल घेरे में खड़े होकर होली गाई जाती थी। कम से कम बीस-पच्चीस होलियारों की टोली, ढोल की गूंज और बीच-बीच में मिलने वाले गुड़ या आलू के गुटके, बच्चों के लिए किसी उत्सव से कम नहीं था, जो लोग रोजगार के लिए बाहर गए होते, वे भी होली पर अपने घर जरूर लौटते थे। उनकी उपस्थिति से गांव में रौनक बढ़ जाती और बच्चों को होलियारों की टोली में शामिल होने का अवसर मिलता, लेकिन समय बदला, पलायन बढ़ा और त्योहारों पर घर लौटने की परंपरा कम होती गई। गांव खाली होने लगे और होली गायन की धारा भी मंद होने लगी। अब इस परंपरा को बचाए रखने की जिम्मेदारी युवाओं के कंधों पर है।

मुझे याद है जब गांव का होली में प्रयोग होने वाला बड़ा ढोल खराब हो गया था और उसे उपयोग में नहीं लाया जा सका। मान्यता थी कि एक बार होली छोड़ दी तो फिर वह दोबारा नहीं हो सकती इसलिए तब हमने एक कनस्तर को ही ढोल बना लिया और पूरे गांव में होली गाई। वह साधन भले ही साधारण था, पर उत्साह और परंपरा के प्रति समर्पण असाधारण था।

बैठकी और खड़ी होली : अनुशासन और उल्लास

कुमाऊं में मुख्यत: दो प्रकार की होली प्रचलित है बैठकी और खड़ी होली। बैठकी होली में शास्त्रीय रागों का आधार स्पष्ट दिखाई देता है। यह विशेष रूप से अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, नैनीताल और चंपावत में अपने पूरे सौंदर्य के साथ जीवित है। खड़ी होली खुले स्थान पर गोल घेरे में कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ते हुए गाई जाती है। इसमें सामूहिकता और उत्सवधर्मिता का अद्भुत संगम होता है।

स्त्रियों की होलियां और मर्यादा का संगीत

पहाड़ों में महिलाओं की होलियां और स्वांग भी अत्यंत रोचक होता है। वे तात्कालिक रचनाएं करती हैं, श्रृंगार और हंसी-ठिठोली के रंग बिखेरती हैं, पर मर्यादा का ध्यान बनाए रखती हैं। शिव के मन माहि बसे काशी, जल कैसे भरूं जमुना गहरी जैसी होलियां आज भी लोकप्रिय हैं।

चंपावत : होली परंपरा का अग्रणी जनपद

वर्तमान समय में यदि पुरानी परंपरा से कुमाऊंनी होली की जीवंतता की बात करें, तो चंपावत जनपद अग्रणी माना जाता है। कभी चंद्रवंशी शासकों की राजधानी रही यह चंपा नगरी प्राकृतिक सुंदरता और ऐतिहासिक महत्व के साथ-साथ अपनी सांगीतिक परंपराओं के लिए भी जानी जाती है। हालांकि यहां की होली में बरसाना की लठमार होली की तरह को विशेषता तो नहीं, पर अपनी सौम्यता और सामूहिक नृत्य-गायन और होलियारों विशेष कदम और ढोल की थाप के कारण यह विशिष्ट पहचान रखती है। यहां महिलाएं और पुरुष समान रूप से दिन में गोल घेरे में खड़े होकर होली गाते हैं। होली में विजयसार की लकड़ी से बने ढोलों का प्रयोग होता है, जिनकी कीमत आज बीस हजार से 30 हजार रुपये तक हो सकती है।

परंपरा की चुनौती और हमारी जिम्मेदारी

आज पलायन, आधुनिकता और बदलती जीवनशैली के कारण यह परंपरा धीरे-धीरे सिमट रही है। शराब जैसी कुप्रथाएं भी कहीं-कहीं इस पावन उत्सव की गरिमा को प्रभावित करती हैं। फिर भी आशा की किरण जीवित है, जब तक युवाओं में अपने लोक-संगीत और संस्कृति के प्रति प्रेम रहेगा, कुमाऊंनी होली का नाद गूंजता रहेगा। कुमाऊं की होली केवल गीत नहीं, बल्कि पीढ़ियों से हस्तांतरित होती आ रही सांस्कृतिक चेतना है। इसे संजोना और आगे बढ़ाना हम सबकी सामूहिक जिम्मेदारी है ताकि आने वाली पीढ़ियां भी ढोल की थाप पर उसी उल्लास से गा सकें 'बलमा घर आए फागुन में...'